भारतीय निर्वाचन प्रणाली की समस्या एवं सुझाव

डॉ. गोपाल सिंह

व्याख्याता राजनीति विज्ञान

राज0महाविधालय– शिवगंज(सिरोही)

स्वन्त्रता के 63 वर्ष बाद इस बात पर भी ध्यान देना उचित होगा कि संविधान द्वारा स्थापित हमारे लोकतान्त्रिक संस्थान किस प्रकार विकसित हैं ? क्यो वे शक्तिशाली हुए हैं अथवा क्या इनमें गिरावट आई हैं ? इस बात पर वाद–विवाद हो सकता है।[1] परन्तु इस पर प्रायः सभी की सहमति होगी कि इतने वर्षो में उनके कार्य करने के तरीकों में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। इसका कारण हमारेसमाज की जटिलता, उसकी आधुनिक समस्याएं, आधुनिक सोच आदि में व्यापक बदलाव आया है। निर्वाचन आयोग भी इसका अपवाद नहीं है। वर्तमान समय में निर्वाचन आयोग द्वारा स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष चुनाव कराना भी चूनौतिपूर्ण कार्य हो गया है। [2] इसके कारणों की पृष्ठभूमि के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इसके लिए जहां एक ओर हमारे निर्वाचन तन्त्र में कमियां हैं, वहीं दूसरी ओर निर्वाचन प्रक्रिया और निर्वाचन व्यवस्थाप भी दोष रहित प्रतीत नहीं होती।

भारतीय निर्वाचन आयोग की दुर्बलता व आलोचना –

(i) दुर्बलता –

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अनुसार मुख्य निर्वाचक अधिकारी

1. अवस्थी एवं अवस्थी : भारत में लोक प्रशासन,2006 पृ.219

2. ''वही''

के अधीक्षण, निर्देश और नियन्त्रण के अनुसार निर्वाचन अधिकारी संसद और राज्य विधान मण्डल के सभी निर्वाचनों के संचालन के सम्बन्ध में अपनी अधिकारिता के भीतर जिले में या क्षेत्र में सभी कार्यो का समन्वय और पर्यवेक्षण करेगा।

उपर्युक्त व्यवस्था से यह स्पष्ट होता ह कि निर्वाचन करवाने का एकमात्र अधिकार निर्वाचन आयोग और उसके अधिकारियों का है, जिसमें अन्य किसी भी संस्था का हस्तक्षेप नहीं हो सकता। उपर्युक्त व्यवस्था का उद्देश्य यही है कि निर्वाचन निर्बाध एवं निष्पक्ष हो और ऐसे प्रतीत भी हों।[3] भारतीय संविधान द्वारा निर्वाचन आयोग को यद्यपि स्वतन्त्र और निष्पक्ष बनाने को पूरा प्रयास भी किया गया है, किन्तु इसके बावजूद भी इसमें अनेक त्रुटियां या दुर्बलताएं पायी जाती हैं, जिसके कारण इसकी आलोचनाएं की जाती रही हैं।

निर्वाचन आयोग की संरचना और उसकी कार्य प्रणाली का विस्तृत अध्ययन करने से उसकी निम्न दुर्बलताएं स्पष्ट होती है।[4]

(i) भारतीय संविधान निर्वाचन आयुक्त एवं निर्वाचन आयुक्तों के कार्यकाल एवं उनकी योग्यता के सम्बन्ध में मौन है। स्पष्ट है कि इन महत्वपूर्ण मुद्दों को राष्ट्रपति की इच्छा पर छोड़ दिया गया है। अर्थात् इसे मन्त्री–मण्डल की इच्छा पर छोड़ दिया गया है। इसका सीधा अर्थ है कि मन्त्री–मंडल निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति के समय राजनीतिक विचारधारा से प्रभावित हो सकता है और अपनी इच्छा को सर्पोपरि कर सकता है।

(ii) संविधान में अन्य निर्वाचन आयुक्तों और प्रादेशिक आयुक्तों की संख्या, याग्यता एवं सेवा–शर्ते आदि के बारे में कुछ भी स्पष्टनहीं है।

---

3. सुभाष कश्यप : हमारी संसद, 1996, पृ. 53

4. आई.बी.जैन : भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, 1994, पृ.23.6.

(iii) भारती संविधान निर्वाचन आयोग को निष्पक्ष और स्वतन्त्र निर्वाचन के संचालन का उत्तरदायित्व तो सौंपता हैं, लेकिन संधीय लोक सेवा आयोग या सर्वोच्च न्यायालय की भांति अपने सचिवालय स्टॉफ की नियुक्ति की स्वत्न्त्रता नहीं देता।

(iv) क्या निर्वाचन आयोग या उसका अध्यक्ष किसी संसद या विधानसभा सदस्य की अनर्हताओ को रद्द कर सकता है ? संविधान में इस सम्बन्ध में कोई स्पष्टीकरण नहीं है। जून 1975 जब इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा श्रीमती इन्दिरा गांधी को संसद की सदस्यता से निष्कासित कर दिया गया, तो तत्कालीन मुख्य निर्वाचन आयुक्त ने दावा किया था कि उसे अनर्हताओं को रद्द करने का अधिकार है। इस तथ्य को यदि स्वीकार कर लिया जाए तो इसका यह अर्थ होगा कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त को न्यायालयों के निर्णयों को रद्द करने की शक्ति है। लेकिन संवैधानिक मर्यादाओं के अनुरूप संविधान निर्माताओं ने संविधान में ऐसी व्यवस्था नहीं की है, जिसक आधार पर मुख्य निर्वाचन आयुक्त इस शक्ति का प्रयोग करे।

भारतीय संविधान के 42 वें संवैधानिक संशोधन (1976) के द्वारा संसद अथवा विधानसभाओं के सदस्य सम्बन्धी अनर्हताओं (अयोग्यताओं) के प्रश्नों को निश्चित करने का अधिकार राष्ट्रपति को दिया गया था,[5] लेकिन 44 वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा इस प्रश्न के सम्बन्ध में 42 वें संशोधन से पूर्व की स्थिति को पुनः स्थापित कर दिया गया है। संविधान के अनुच्छेदों 103 एवं 192 में संशोधन कर यह व्यवस्था की गई कि संसद सदस्यों की अयोग्यता सम्बन्धी प्रश्न का निर्णय राष्ट्रपति द्वारा तथा विधान मण्डलों के सदस्यों की अयोग्यता सम्बन्ध प्रश्न का निर्णय सम्बंधित राज्य के

5. एम.पी. रॉयः भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, 1989, पृ. 493 1

राज्यपाल द्वारा चुनाव आयोग के परार्मशानुसार निश्चित किया जायेगा, राष्ट्रपति के अनुसार नहीं जैसा कि 42 वें संशोधन में व्यवस्था की गयी थी।[6]

(v) चुनाव में कानून और व्यवस्था को बनाये रखने की जिम्मेदारी राज्य सरकार की है, लेकिन चुनाव के अधीक्षण, निर्देशन और नियन्त्रण की जिम्मेदारी आयोग को सौंपी गई है। संविधान इस सम्बन्ध में इस बात का स्पष्टीकरण नहीं करता है कि क्या राज्य सरकार कानून ओर व्यवस्था की आड़ में निर्वाचन आयोग की जानकारी और स्वीकृति के बिना किसी संसदीय या विधानसभा के निर्वाचन क्षेत्र में बाहरी पुलिस अर्थात् किसी दूसरे राज्य की पुलिस को तैनात कर सकती है अथवा नहीं।[7]

निर्वाचन क्षेत्र में किसी दूसरे राज्य की पुलिस को तैनात करना स्वतन्त्र तथा निष्पक्ष मतदान में हस्तक्षेप होगा, क्योंकि बाहरी पुलिस का आचरण मतदाताओं को आतंकित करने वाला भी हो सकता है। उदाहरणार्थ– निर्वाचन आयोग ने, उसकी जानकारी और स्वीकृति के बिना तैनात की गयी बाहरी पुलिस के आधार पर 1981 में हुये गढ़वाल संसदीय क्षेत्र के उपचुनावें को रद्द कर दिया था। इस क्षेत्र में पुनर्मतदान के आदेश दिये गये थे। 28 अगस्त, 1993 को टी.एन. शेषन ने एक आदेश द्वारा 1995 से निर्वाचनों को यह कह कर स्थगित करने की धमकी दी कि ''फोटो पहचान–पत्र नहीं तो चुनाव नहीं''। यदि अनुच्छेद 324 का यही अर्थ लगाया जाए तो संसदीय लोकतन्त्र की बुनियाद ही हिल जायेगी।[8]

(vi) भारतीय संविधान उन परिस्थितियों का उल्लेख नहीं करता, जिनमें किसी

---

6. इकबाल नारायण : राष्ट्रीय आन्दोलन तथा भारतीय संविधान,1980, पृ.608

7. आई.बी.जैन : भारतीय राजनीतिक व्यवस्था,1994, पृ.23.7

8. पी.के.चड्डा : भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, 1998–99, पृ.277

चुनाव को स्थगित या रद्द किया जा सकता है। यदि निर्वाचन आयोग पुलिस के दस्तों की दूसरे राज्यों में तैनाती या अन्य सामान्य कारणों के आधार पर चुनाव स्थगित या रद्द कर देता है तो संघ या राज्य में कोई भी सत्तारूढ़ दल अपनी स्वार्थ सिद्वि के लिये चुनावों को रद्द करवा सकता है या स्थगित करवा सकता है और इस प्रकार निर्वाचन आयुक्त के आदेश के आधार पर सत्ताधारी दल बिनाचुनाव कराये अनिश्चित काल के आदेश के आधार पर सत्ताधारी दल बिना चुनाव कराये अनिश्चित काल के लिये पदारूढ़ रह सकता हे। यह स्थिति लोकतन्त्र के लिये घातक सिद्व हो सकती है। अतः संविधान में उन परिस्थितियों के स्पष्ट उल्लेख की आवश्यकता है, जिनमें चुनाव को स्थगित या रदद् किया जा सकता है।। [9]

(vii) राजनीतिक दल बदल की परिस्थितिं में भी राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा मुख्य निर्वाचन आयुक्त से सलाह लेने की व्यवस्था भी खतरे से खाली नहीं हैं, क्योंकि यह व्यवस्था उसे दलों की राजनीति में डाल सकती है।[10]

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि निर्वाचन आयोग की कार्य पद्वति में अनेक संवैधानिक अस्पष्टताएं विद्यमान हैं, जो निर्वाचन आयोग की निष्पक्षता पर सन्देह उत्पन्न करती हैं। इसलिए निर्वाचन आयोग की भूमिका की कटु आलोचना की जाती है।

(ii) **आलोचना** [11]

विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा समय–समय पर निर्वाचन आयोग पर शासक दल के

9. पी.के. चड्डा : भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, 1998, –99, पृ.277

10. ''वही'', पृ. 276

11. आई.बी. जैन : भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, 1994, पृ.23.7

साथ पक्षपात पूर्ण व्यवहार के आरोप लगाये जाते रहे हैं। चौथे आम चुनावों के पश्चात् निर्वाचन आयोग के प्रति शिकायतें अधिक की गयी हैं। नवीं एवं दसवी लोकसभा के चुनावों के समय भी निर्वाचन आयोग पर कई नवीं एवं दसवी लोकसभा के चुनावों के समय भी निर्वाचन आयोग पर कई आरोप लगाये गये, जिससे आयोग के प्रतिनिष्ठा एवं विश्वास में भी कमी आयी है। निर्वाचन आयोग के सम्बन्ध में प्रायः निम्नांकित आलोचनाएं की जाती है।

(1) **निर्वाचन आयोग बहु–सदस्यीय हो एकल नही –**

निर्वाचन आयोग में अधिकाशंतः निर्वाचन आयुक्त का पद एकल ही रहा है अर्थात् आयोग एक सदस्यीय ही रहा। केवल नवीं लोकसभा चुनाव से पूर्व 1989 में आयोग में दो अतिरिक्त आयुक्तों की नियुक्ति की गयी थी, जिन्हें 1990 में समाप्त कर दिया गया। निर्वाचन आयोग का कार्य अत्यधिक विस्तृत है, अतः एक व्यक्ति द्वारा इन कार्यो को समय पर पूरा नहीं किया जा सकता है। एकल पद होने के कारण निर्वाचन आयोग में शक्ति के दुरूपयोग की सम्भावना भी बढ़ जाती है। 1993 से आयोग में मुख्य निर्वाचन आयुक्त टी.एन. शेषन के साथ वी.सी.कृष्णामूर्ति और एम.एस. गिल को निर्वाचन आयुक्त के पद पर नियुक्त कर पुनः निर्वाचन आयोग को बहुसदस्यीय बनाया गया, वर्तमान में भी आयोग बहुसदस्यीय ही है।

(2) **निर्वाचन आयोग की निष्पक्ष भूमिका नही –**

निर्वाचन आयोग के सम्बन्ध में एक अन्य महत्वपूर्ण आलोचना यह भी की जाती ह कि निर्वाचन आयोग सत्तारूढ़ दल एवं सरकार के इशारे पर ही कार्य करता है। सैद्धान्तिक रूप में यह सत्य है कि निर्वाचन का समय एवं तिथियां निर्वाचन

अध्याय– चतुर्थः भारतीय निर्वाचन प्रणाली : समस्या एवं सुझाव

आयोग द्वारा ही निर्धारित किये जाते है, लेकिन व्यहार में यह काय निर्वाचन आयोग सत्तारूढ़ दल की इच्छा पर ही करता है। उदाहरणार्थ– 1987–88 में लोकसभा के लिये रिक्त स्थानों पर उपचुनाव न कराने का निर्णय सत्तारूढ़ दल की इच्छा के आधार पर ही लिया गया था। इसी प्रकार दसवीं लोकसभा के चुनाव एवं उपचुनावों की घोषणा भी सरकार की सुविधा को ध्यान में रखकर की गयी। श्री राजीव गांधी की हत्या के बाद यह प्रश्न विवादास्पद बन गया था कि चुनाव की नयी तारीखों का फैसला किसने किया ? तत्कालीन मुख्य चुनाव आयुक्त टी.एन.शेषन ने फोकस कार्यक्रम में स्पष्ट स्वीकार किया कि तारीखों का फैसला सरकारी नजरिये को ध्यान में रखकर किया गया है।

(3) **निर्वाचन आयोग चुनाव अनियमितताओं को रोकने में असमर्थ** –

नवीं एवं दसवीं लोकसभा चुनाव एवं उपचुनावों के आधार पर यह पूर्णतः स्पष्ट हो चुका है कि निर्वाचन आयोग की भूमिका कमजोर होती जा रही है। वर्तमान में निर्वाचन आयोग चुनाव सम्बन्धी गैर संवैधानिक तौर – तरीकों पर नियन्त्रण स्थापित करने में असफल–सा रहा है। पिछले आम चुनावों में बाहुबल, शस्त्रबल, हिंसा, फर्जी मतदान, मतपेटियों का गायब होना, मतदान केन्द्रों पर कब्जा, पुलिस की

8

गैर जिम्मेदारी आदि ऐसे तत्व खुलकर सामने आये हैं, जिससे आयोग एक निरर्थक संस्था दिखाई देने लगा है। आलोचकों एवं विरोधी दलों द्वारा इस सम्बन्ध में यह भी आक्षेप लगाया जाता है कि निर्वाचन आयोग की इस भूमिका में सत्तारूढ़ दल सहयोग प्रदान कर रहा है।

(4) **निर्वाचन आयोग द्वारावा स्तविक अधिकारों का उपयोग नहीं –**

चुनावों की अव्यवस्थाओं एवं भ्रष्टाचार को देखते हुये निर्वाचन आयोग पर यह भी आरोप लगाया जाता है कि इस आयोग के अधिकार अब केवल कागजी अधिकार रह गये हैं, और जो अधिकार निर्वाचन आयोग को प्राप्त हैं, वह आज व्यवस्थाओं पर काबू एवं नियन्त्रण पाने की दृष्टि से पर्याप्त भी नहीं है।

(5) **निर्वाचन आयोग की राज्य कर्मचारियों पर निर्भरता –**

निर्वाचन आयोग के सम्बन्ध में यह भी एक सच्चाई है कि निर्वाचन आयोग के पास निर्वाचन कार्यो के लिये स्वतन्त्र कर्मचारी तन्त्र नहीं है, राज्य कर्मचारी भी निर्वाचन कार्य को इच्छा से नही करना चाहते हैं। इसका अन्य कारण यह भी है कि राज्य कर्मचारियों को पर्याप्त सुविधायें उपलब्ध नही करायी जाती है, ओर न ही उनकी सुरक्षा की कोई प्रभावी व्यवस्था होती है।

(6) **निर्वाचन आयोग में मुख्य निर्वाचन आयुक्त के पद पर अधिकांशतः प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों की नियुक्ति –**

निर्वाचन आयोग में मुख्यतः उन प्रशासनिक अधिकारियों को मुख्य निर्वाचन आयुक्त के पद पर नियुक्त किया जाता है, जिन्हें सत्तारूढ़ दल निष्ठावान मानता है। अतः ऐसा अधिकारी निष्पक्ष एवं स्वतंत्र होकर कार्य नही कर सकता है। मत दो लोकसभा

चुनावों में मुख्य निर्वाचन आयुक्त की जो भूमि उमर कर आयी, उसकी अनेक पक्षों द्वारा आलोचना की गयी है।

(7) **निर्वाचन आयोग के सदस्यों की नियुक्ति का आधार निष्पक्ष नही –**

प्रायः देखने में आया हे कि सत्तारूढ़ दल द्वारा आयोग के सदस्यों की नियुक्ति, अपने स्वार्थ के लिए मनमाने ढंग से की जाती है, जो उचित नहीं है। शासक दल की कृपा से पद ग्रहण करने वाले आयोग के सदस्यों की निष्पक्षता संदिग्ध ही रहती है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि निर्वाचन आयोग की भूमिका निष्पक्ष के रूप में घूमि होती जा रही है, जनमानस का निर्वाचन आयोग में से विश्वास कम होता जा रहा है। इसलिये निर्वाचन आयोग के पुनर्गठन एवं इसमें सुधार की मांग की जाती रही है।

निर्वाचन आयोग एक स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष संस्था बनी रहे, इस सम्बन्ध में निम्न सुझाव भी राजनेताओं एवं बुद्विजीवियों द्वारा समय–समय पर रहे है–

(i) निर्वाचन आयोग को एकल सदस्यीय न बनाकर बहुसदस्यीय बनाया जाना चाहिए। अतः इसमें एक मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा तीन या चार अन्य स्थायी सदस्यों को नियुक्त किया जाना चाहिए।

(ii) निर्वाचन आयोग के सदस्यों की नियुक्ति एक ऐसे निकायल के द्वारा की जानी चाहिये, जिसमें मुख्य न्यायाधीश, प्रधानमन्त्री और संसद में विपक्ष के नेता हो।

(iii) इसमें केवल सर्वोच्च न्यायालय के सेवानिवृत न्यायाधीशों को ही मुख्य निर्वाचन आयुक्त के रूप में नियुक्त किया जायें।

(iv) उपचुनावों के बारे में निर्णय लेने की शक्ति निर्वाचन आयोग में ही निहित हो, सत्तारूढ़ दल उसमें हस्तक्षेप न करें।

(v) निर्वाचन आयोग के पद पर निवृत आयुक्तों को पुनः किसी लाभ के पद पर नियुक्त न किया जाये।

ताकुण्डे समिति द्वारा भी सुझाव दिये गये कि सभी राज्यों में निर्वाचन आयोग स्थापित किये जायें और केन्द्रीय निर्वाचन आयोग में एक के स्थान पर तीन सदस्य हों तथा उनकी नियुक्ति राष्ट्रपति एक ऐसी समिति की सिफारिशत पर करें, जिसमें प्रधानमन्त्री, सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश व विपक्ष के नता हों।[12]

स्वंय **निर्वाचन आयोग** ने 1986–87 के अपने प्रतिवेदन में कहा था कि संसद के मुख्य निर्वाचन आयुक्त की नियुक्ति की प्रक्रिया को निर्धारित करने हेतु एक विधि का निर्माण करनाचाहिए, जिससे निर्वाचन आयोग विभिन्न आलोचनाओं से मुक्त हो सके। किन्तु बहुसदस्यीय आयोग बनाये जाने का आयोग ने स्वंय विरोध किया, क्योंकि व्यवहार में चुनाव सम्बन्धी मामलों का निर्णय अनेक व्यक्तियों द्वारा नहीं किया जा सकता। [13]

---

12. बी.एल. फड़िया : भारतीय शासन एवं राजनीतिक,2010,पृ.637

13. ''वही''

भारतीय निर्वाचन प्रणाली की समस्याएं एवं सुझाव –

संविधान के अधीन तथा जन–प्रतिनिधित्व अधिनियम के द्वारा चुनाव की व्यवस्था के विषय में विस्तृत प्रावधान किये गये है, जिससे जनता द्वारा उसकी ओर से शासन कार्य में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों का निर्वाचन ठीक ढंग से हो सके।[14] निर्वाचन प्रणाली को अधिकाधिक जन–प्रतिनिधि प्रणाली बनाने, उसमें भारतीय जनता की सहभागिता को बढ़ाने और निर्वाचनों को निष्पक्ष एवं स्वतन्त्र बनाने तथा उन्हें धन–बल, भुज–बल और भय रहित करने की प्रथम अनिवार्य आवश्यकता है।[15] इसके अभाव में स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष चुनाव की कल्पना करना और इसके फलस्वरूप भारतीय जनतन्त्र की सफलता की आशा नहीं की जा सकती।

स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष चुनाव की पद्वति ओर चुनाव व्यवस्था के सम्बन्ध में संविधान द्वारा यद्यपि कितने ही प्रयास किये गये हैं, किन्तु व्यवहार में देखने में यह आया है कि हमारी निर्वाचन व्यवस्था अनेक दोषों से ग्रसित हैं, जिन्हें दूर करने के लिये **''संयुक्त संसदीय समिति'', ''तारकुंडे समिति'', जन समिति, ''दिनेश गोस्वामी समिति'', स्वंय निर्वाचन आयोग** आदि द्वारा समय–समय पर सुझाव भी दिये गये जाते रहे हैं, जिनके आधार पर भारतीय निर्वाचन व्यवस्था की समस्याओं और समाधान को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

(1) राजनीतिक दलों को प्राप्त जन समर्थन और स्थानों के अनुपात में गम्भीर अन्तर [16]

हमारी चुनाव व्यवस्था में जिस प्रत्याशी को अन्य सभी प्रत्याशियों से

14. इकबाल नारायण : राष्ट्रीय आन्दोलन तथा भारतीय संविधान, 1980, पृ.668

15. पी.के.चड्ढा : भारतीय राजनीतिक व्यवस्था,1998,–99, पृ.431

16. बी.एल. फड़िया : भारतीय शासन एवं राजनीतिक, 2010, पृ.624

अधिक वोट मिल जाते हैं, उसे ही निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है। विजयी प्रत्याशी के लिए यह जरूरी नहीं कि उसे कुल मतों का बहुमत मिले। इस विधि को ''जो सबसे आगे वही जीते'' प्रणाली (फर्स्ट–पास्ट–द–पोस्ट–सिस्टम) कहते हैं।

इसे भाग्य की विडम्बना ही कहा जायेगा कि हमारे ज्यादातर सांसद और विधायक 50 प्रतिशत से भी कम मतों से निर्वाचित होत है। अगर चुनाव क्षेत्र के समस्त मतदाताओं को ध्यान में रखा जाए तो यह लगभग 25 प्रतिशत से भी कम बैठता है। कई राज्य में तो लगभग 90 प्रतिशत तक विधायक अल्पसंख्यक मतों से जीतते है। 11वीं, 12वीं और 13वीं लोकसभा के चुनावों में लगभग 67 प्रतिशत सदस्य ऐसे थे जो कुल मतदान में से 50 प्रतिशत से भी कम मत हासिल करके सदन में आये थे। कुछ मामलों में तो 13 प्रतिशत जितना मामूली मत हासिल करने वाले उम्मीद्वार भी जीत कर आए थे।

इसका सीधा–सा कारण यही हे कि भारत में साधारण बहुमत की निर्वाचन पद्वति अपनायी गयी ह, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक निर्वाचन क्षे. से वह उम्मीद्वार निर्वाचित घोषित होता है, जिसे सबसे अधिक मत मिले हों, चाहे विरोधी अथवा पराजित उम्मीद्वारों को मिल मतों का योग उसे प्राप्त मतों से कितना ही अधिक हो। इसके परिणामस्वरूप बहुधा उस दल को सरकार बनाने का अवसर मिल जाता है, जिसे देश के बहुमत का समर्थन प्राप्त नही है और छोटे दलों को उन्हें प्राप्त जन समर्थन की तुलना में बहुत ही कम स्थान प्राप्त होते है। महत्वपूर्ण तथ्य है कि कांग्रेस जिसने प्रथम तीन आम चुनावों में 70 प्रतिशत से अधिक, चतुर्थ में आम चुनाव में 54 प्रतिशत, 1971 में 68 प्रतिशत और 1980 में लगभग 64 प्रतिशत स्थान प्राप्त किये, वह इनमें से किसी भी चुनाव में 50 प्रतिशत मत प्राप्त नही कर सकी थी।

1980 के लोकसभा चुनावों में एक विसंगति इस रूप में देखी गयी कि जनता पार्टी ने मतदाताओं के 19.94 प्रतिशत ओर जनता ''एस'' (लोकदल) ने 9.43 प्रतिशत मय प्राप्त किये, लेकिन जनता ''एस'' (भारतीय लोकदल) को जनता पार्टी की तुलना में 10 स्थान अधिक प्राप्त हुए। 1999 के 13 वीं लोकसभा चुनावों में कांग्रेस को 114 स्थानों के साथ 28.42 प्रतिशत मत तथा भाजपा को 182 स्थानों के साथ 23.70 प्रतिशत मत प्राप्त हुए। 2009 में सम्पन्न 15वीं लोकसभा के चुनावों में भारत के दो प्रमुख दलों को प्राप्त मतों के प्रतिशत और उन्हें प्राप्त स्थानो से भी यह बात नितान्त स्पष्ट है।

राजनीतिक दल	प्राप्त मत प्रतिशत	लोकसभा में पाप्त स्थान
इन्दिरा कांग्रेस	29.67	206
भारतीय जनता पार्टी	19.29	116

लोकतान्त्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत इस स्थिति को न्यायपूर्ण नहीं कहा जा सकता। अतः निर्वाचन प्रणाली की इस विसंगति को दूर करने के लिए यह सुझाव दिया जाता हे कि देश में चुनावों के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व की ''सूची प्रणाली' को अपनाया जाना चाहिए, जिससे प्रत्येक राजनीतिक दल को उसे प्राप्त जन समर्थन के आधार पर विधान मण्डल में स्थान प्राप्त हो सके।

(2) चुनावों में धन की बढ़ती हुई भूमिका –

भारतीय चुनाव मंहगे होते जा रहे हैं। चुनावों में इतना अधिक धन खर्च होता है कि केवल धनी और पूंजीपति लोग ही चुनाव लड़ सकते हैं। इसके फलस्वरूप चुनावों में एक अत्यधिक गम्भीर दोष, धन की बढ़ती हुई भूमिका के रूप में सामने आया है। हमारे कानून निर्माता इस दोष के प्रति सचेत थे और इसी कारण उनके द्वारा चुनाव में

उम्मीद्वार द्वारा किये जाने वाले व्यय की सीमा निश्चित की गयी तथा वास्तविकता को देखते हुऐ चुनाव खर्च की सीमा को समय – समय पर बढ़ाया भी गया है। वर्तमान में अब बड़े लोगसभा क्षेत्र में प्रत्याशी द्वारा अधिकतम 25 लाख रूपए तक तथा विधानसभा क्षेत्रो ं में अधिकतम 10 लाख रूपए तक व्यय किए जा सकते है।[17]

कानून में यह सीमा विद्यमान है, लेकिन व्यावहारिक रूप में राज्यों में इसका कोई अस्तित्व नहीं है। वास्तविक रूप में चुनावों के अन्तर्गत खर्च किये जाने वाले धन की मात्रा के सम्बन्ध में भूतपूर्व संसद सदस्य कृष्णकान्त लिखते है, ''लोकसभा सदस्य को अपने चुनाव में ईमानदारी के साथ 30 से 40 लाख रूपये खर्च करने पड़ते है। औसतन 65 करोड़ रूपया लोकसभा के चुनावों पर खर्च होता है और लगभग 135 करोड़ रूपया विधानसभा चुनावों पर। ''श्री कृष्णकान्त द्वारा यह बात 1974 में कही गयी थी, आज 2002 में तो उस समय की तुलना में चुनाव व्यय निश्चित रूप से बहुत अधिक बढ़ गया है। अब तो लोकसभा चुनाव में व्यय निश्चित रूप से बहुत अधिक बढ़ गया है। अब तो लोकसभा चुनाव में औसतन 70 से 80 लाख रूपया खच करना होता है , इसके अन्तर्गत भ्रष्ट उपायों के रूप में खर्च की

जाने वाली राशि सम्मिलित नहीं है। कृछ उदाहरणों में लोकसभा उम्मीद्वार ने अपने चुनाव अभियानर में 2 से 10 करोड़ रूपये या इससे भी अधिक ओर कुछ उदाहरणों में विधानसभा उम्मीद्वार द्वारा अपन चुनाव अभियान में एक करोड़ रूपये या उससे अधिक धन राशि खर्च की गयी।

एक सर्वेक्षण के अनुसार 2004 के लोकसभा के निर्वाचनों ममें किया गया खर्चा 5000 करोड़ रूपये है, जो 1999 में किये खर्चे का तिगुना है।[18] यह स्थिति आर्थिक क्षेत्र ओर राजनीतिक क्षेत्र दोना में ही अनेक दोषों को जन्म देकर समस्त व्यवस्था का विकृत

करने वाली है। 5 अक्टूबर, 1974 को संसद सदस्य अमरनाथ चावला का चुनाव अवैध घोषित करनते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने भी चुनावों में धन की बढ़ती हुई शक्ति के प्रति सचेत किया है। चुनाव में धन की निरन्तर बढ़ती हुई इस भूमिका के कारण ही काला धन और भ्रष्ट राजनीतिज्ञ एक – दूसरे के साथ जुड गये है। वस्तुतः चुनावों में धन की शक्ति को नियंत्रित करना बहुत अधिक आवश्यक हो गया है और इस सम्बन्ध में प्रमुख निम्न सुझाव दिये जा सकते है –

(i) **राजनीतिक दलों के व्यय को उम्मीद्वार के चुनाव खर्च में शामिल करना–**

''अमरनाथ चावला विवाद'' में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के बाद 19 अक्टूबर, 1974 को राष्ट्रपति द्वारा इस आशय का अध्यादेश जारी किया गया कि चुनाव में उम्मीद्वार के राजनीतिक दल द्वारा किये जाने वाले खर्च को उम्मीद्वार द्वारा किये गये खर्च में सम्मिलित नहीं समझा जायेगा।

---

17. एस.सी.सिंहल – भारतीय शासन एवं राजनीति, 2005, पृ. 277
18. आर.पी. जोशी – भारतीय शासन एवं राजनीति, 2005, पृ. 375
19. बी.एल. फड़िया – भारतीय शासन एवं राजनीति, 2010, पृ. 625

इस अध्यादेश के कारण वर्तमान समय में स्थिति यह हे कि यदि किसी व्यक्ति को सत्तारूढ़ दल या सत्तारूढ़ होने की सम्भावना रखने वाले राजनीतिक दल के उम्मीद्वार की स्थिति प्राप्त हो जाए, तो उसे प्राप्त साधनों और परिणामतया उसके चुनाव व्यय की व्यवहार में कोई सीमा ही नहीं रहती। वह चुनाव लड़ने के लिए अपने राजनीतिक दल से नकद राशि ही नहीं वरन् जीप गाड़ियां और अन्य वाहन झण्डे, बड़ी संख्या में छोटे – बड़े पोस्टर, वीडियों टेप और प्रचार साहित्य सभी कुछ प्राप्त कर लेता है और वह जितना भी खर्च करे, सबका सब कानूनी और जायज होता है, क्योंकि राजनीतिक दल द्वारा खर्च की जाने वाली राशि को उम्मीद्वार के खर्च में शामिल नहीं समझा जाता। 19 अक्टूबर, 1974 को जारी किये गये अध्यादेश के कारण चुनाव व्यय के सम्बन्ध में सीमा निर्धारण का कोई महत्व नहीं रह गया है।

चुनाव आयोग ने 1982 में सरकार से अनुरोध किया हमें 19 अक्टूबर, 1974 से पूर्व की स्थिति को पुनः अपनाना चाहिए, जिसमें राजनीतिक दल द्वारा खर्च किये जाने वाले धन की उम्मीद्वार के चुनाव व्यय में सम्मिलित करने की व्यवस्था है। अतः 19 अक्टूबर, 1974 का मध्यादेश वापस लिया जाना चाहिए, सभी राजनीतिक दलों से अलग–अलग उम्मीद्वारो के लिए खर्च की गयी धनराशि का हिसाब पूछा जाना चाहिए और स्वयं उम्मीद्वार, उसके राजनीतिक दल, उसके मित्र सम्बन्धी और शुभचिन्तक सभी द्वारा चुनाव प्रसंग में खर्च की गयी धन राशि को उम्मीद्वार के चुनाव खर्च में, सम्मिलित किया जाना चाहिए। हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने एक महत्वपूर्ण फैसले में यह निर्णय दिया है कि उम्मीद्वार के राजनीतिक दल द्वारा उस पर किए गए व्यय को भी शामिल किया जाएगा। सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय से आशा की जाती है कि चुनाव व्यय पर आवश्यक कुछ अंकुश लग सकेगा।

(ii) **राजनीतिक दलों के आय–व्यय विवरण की विधिवत् जांच**

राजनीतिक दलों के लिए आय – व्यय का समस्त विवरण रखा जाना अनिवार्य होना चाहिए और प्रत्येक राजनीतिक दल के लिए प्रतिवर्ष मुख्य चुनाव आवयुक्त द्वारा निश्चित किये गये लेखा परीक्षक द्वारा जांच शुदा हिसाब प्रकाशित करना अनिवार्य होना चाहिए। राजनीतिक दल द्वारा इस सम्बन्ध में बरती गयी किसी भी अनियमितता या लापरवाही पर चुनाव आयोग द्वारा कड़ा दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए और विशेष स्थिति में आयोग को अधिकार होना चाहिए कि वह सम्बन्धित राजनीतिक दल की मान्यता समाप्त कर सके।

भारतीय परिस्थितियों में राज्य द्वारा खर्च का समस्त भार अपने ऊपर लेना अव्यावहारिक हो सकता है, लेकिन रजनी कोठारी के सुझाव को स्वीकार किया जा सकता है। **''शासन के द्वारा दलों के शामियानी, दरी, जीप, पोस्टर छपवाने के लिए निर्धारित धन राशि आदि मूल सुविधाएं दी जानी चाहिए जिससे चुनाव समान शक्तियों के बीच एक खेल न बन सके और चुनावों में धन की भूमिका को कम किया जा सके।**[20] शासन के द्वारा सभी दलों के लिए चुनाव सभाओं की व्यवस्था करने और मतदाताअें में पर्ची बांटने का कार्य और उन्हें चुनाव स्थल तक पहुंचाने का कार्य भी अपने हाथ में लिया जा सकता है।

इस सम्बन्ध में 1977 में एक प्रशंसनीय कार्य हुआ है। जून 1977 के विधान सभा चुनावों के पूर्व 4 राष्ट्रीय दलों और 8 राज्य–स्तरीय दलों को समान आधार पर

---

20. आर.पी. जोशीः भारतीय सरकार एवं राजनीति, 2007, पृ. 389

''आकाशवाणी से प्रसारण की सुविधा'' प्रदान की गयी है। यह निश्चित रूप से सही दिशा में एक प्रयास है और 1980 में सत्ता परिवर्तन के बाद भी इसे जारी रखा गया, किन्तु नवम्बर 1989 के चुनावों में कांग्रेस (आई) की हठधर्मिता और आयोग की उदासीनता के कारण इस आगे क्रियान्वित नहीं किया जा सका। [21]

(3) निर्वाचनों का अपराधीकरण

वर्तमान चुनावों में अपराधीकरण की प्रवृति फैलती जा रही है, जिसके फलस्वरूप चुनावों में व्यापक रूप से बाहुबल और हिंसा का प्रयोग होने लगा है। बिहार, उत्तर प्रदेश, प.बंगाल, महाराष्ट्र, जम्मू – कश्मीर, हरियाणा आदि राज्यों में शायद ही कोई चुनाव सम्पन्न हुआ हो जहां अपराधिक गतिविधियां ओर इसके फलस्वरूप हिंसा की बलिवेदी पर निर्दोष व्यक्तियों की जानें न गई हों। हिंसा के ऐसे वातावरण में शान्ति पसन्द विवेकशील व्यक्ति, जिनके मत का ।अत्यधिक महत्व है, अपने मताधिकार के प्रयोग से घबराते या कतराते है। हिंसक गतिविधियों से क्षुब्ध होकर आखिर निर्वाचन आयोग को भी कहना पड़ा– ''जब तक राजनीतिक दल एक होकर हिंसा के विरूद्व जनमत जाग्रत नहीं करते, चुनाव आयोग तथा प्रशासन बौना और पंगु बना रहेगा– समस्या का समाधान चुनाव आयोग को अधिक अधिकार देने से नहीं वरन् स्थानीय स्तर पर राजनीतिज्ञों और अवांछित तत्वों में सांठ–गांठ समाप्त करने से होगा। [22]

---

21. आर.पी. जोशीः भारतीय सरकार एवं राजनीति, 2007, पृ. 389

22. बी.एल.फड़ियाः भारतीय शान एवं राजनीतिक, 2010 पृ. 627

14 वीं लोकसभा के चुनाव परिणामों को इस दृष्टि से अवश्य ही अप्रत्याशित कहा जा सकता है। इन चुनावों में अनेक अपराधिक छवि वाले उम्मीद्वार पराजित हुए। बिहार एवं उत्तरप्रदेश से दबदबा रखने वाले अनेक अपराधिक छवि रखने वाले उम्मीद्वार अनेक अपराधिक छवि रखने वाले उम्मीदवार पराजित हुए। यह तो कहना कठिन होगा कि ऐसा चुनाव आयोग की सख्ती के कारण हुआ या मतदाता ने ही अपराधियों के दबाव में न आकर निडर होकर मतदान किया। [23] निश्चय ही राजनीति में अपराधिकरण एक गम्भीर समस्या है, जिसका निराकरण आवश्यक है। जब तक मतदाताओं को भय – मुक्त वातावरण नहीं मिलेगा, उनके लिए अपने मतों का सही प्रयोग करना कठिन ही होगा।

आम मतदाताओ को भय – मुक्त वातावरण के लिए निम्न सुझाव समय–समय पर दिये जाते रहे हैं[24]

(1) जिन निर्वाचन क्षेत्रों में हिंसा ओर बल प्रयोग की आशंका हो, वहां स्थानीय पुलिस को समस्त निर्वाचन क्षेत्र से पूर्णतया दूर रखते हुऐ अन्य राज्यों की पुलिस और अर्द्ध–सैनिक बल पर्याप्त संख्या में तैनात किया जाना चाहिए ओर उसे स्थिति से निबटने के लिए सभी आवश्यक अधिकार दिये जाने चाहिए।

(2) एहतियात के तौर पर दो दिन के लिए समस्त निर्वाचन क्षेत्र में आग्नेय अस्त्रों एवं अन्य हथियारों के लाने – ले – जाने पर प्रतिबन्ध न केवल लगाया, वरन् कड़ाई के साथ लागू भी किया जाना चाहिए।

---

23. आर.पी.जाशी : भारतीय शान एवं राजनीतिक, 2007 पृ. 390

24. बी.एल. फड़िया :भारतीय शान एवं राजनीतिक, 2010 पृ. 628

(3) मतदान के दिन से दो दिन पहले से शराब की बिक्री पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया जाना चाहिए।

(4) ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए कि हिंसा, बाहुबल की शक्ति, भ्रष्ट साधन अपनाये जाने के आधार पर चुनाव याचिकाएं उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय में प्रस्तुत की जावें, सम्बंधित अदालतों के लिए 6 माह या अधिक से अधिक एक वर्ष की अवधि में उन पर निर्णय करना अनिवार्य कर दिया जाये।

(5) प्रत्यक्ष या परोक्ष में दाषी पाये गये व्यक्तियों पर सदैव के लिए कोई भी चुनाव लड़ने पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाना चाहिए।

(6) जिस किसी सरकारी कर्मचारी पर अपराधी के साथ सहयोग करने पर कर्तव्य पालन में ढ़िलाई बरतने का आरोप सिद्व हो, उसके विरूद्व तत्काल कठोर कार्यवाही की जानी चाहिए।

उपुर्यक्त व्यवस्था करनें के लिए कानूनी ढांचे में जो भी संशोधन परिवर्तन करना जरूरी हो, वह सभी कुछ किया जाना चाहिए ।

(4) **जाली – मतदान**

बल प्रयोग ओर मतदान केन्द्रों पर कब्जे से जुड़ी हुई एक स्थिति जाली मतदान की है जो हमारी चुनाव व्यवस्था की एक अन्य गम्भीर समस्या है। जाली मतदान व्यापक रूप से संगठित स्तर पर बन्दूक के बल पर मतदाताओं को डरा– धमका कर होता है।[25]

25. आई.बी. जैन : भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, 1994, पृ. 23.66

इस स्थिति को रोकने के लिए मतदाताओं को **''फोटोग्राफी से युक्त पहचान–पत्र''** दिये जाने चाहिए। इसके साथ ही जाली मतदान को भ्रष्ट आचरण घोषित कर दिया जाना चाहिए, जिसके आधार पर निर्वाचन अवैध घोषित किया जा सके।

(5) **निर्दलीय उम्मीद्वारों की बड़ी संख्या –**

अब तक के सभी चुनावों में एक समस्या निर्दलीय उम्मीद्वारों की एक बड़ी संख्या ने पैदा की है। यह बड़ी संख्या चुनाव व्यवस्था करने में कठिनाइयां पैदा करती है। अधिकांश निर्दलीय उम्मीद्वार तो मखौल के रूप मे ंचुनाव लड़ते है या कई बार वे प्रमुख उम्मीद्वारों से चुनाव मैदान से हटाने के लिए धनराशि प्राप्त करने की आशा में उम्मीद्वार बन जाते है। भूतपूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त एस.एल.शकधर के अनुसार– ''इनकी संख्या कम करने के लिए कुछ निश्चित कदम उठाये जाने चाहिए, क्योंकि अत्यधिक निर्दलीय प्रत्याशियों द्वारा चुनाव में भाग लिए जाने से बड़ी मतदान पेटियों तथा लम्बे मत – पत्रो ंकी तैयारी जैसी गम्भीर समस्या उत्पन्न होती है।[26]

यद्यपि कुछ क्षेत्रों की ओर से प्रेरित इस सुझाव को स्वीकार नही किया जा सकता कि निर्दलीय रूप से चुनाव लड़ने पर कानूनी रोक लगा देनी चाहिए लेकिन ऐसा कुछ अवश्य किया जाना चाहिए, जिससे ''मखौल'' के रूप में चुनाव लड़ने पर रोक लगे। इस सम्बन्ध में यह सुझाव विचारणीय है कि जमानत की रकम कम से कम दस गुना बढ़ा दी जानी चाहिए अर्थात् लोकसभा के लिए 500 रूपये सवे बढ़ाकर 5 हजार रूपये और विधानसभा के लिए 250 रूपये से बढ़ाकर 2,500 रूपये कर दी जानी चाहिए।

---

26. इकबाल नारायण : राष्ट्रीय आन्दोलन तथा भारतीय संविधान,1980,पृ.674

(6) **मतदाताओं की अनुपस्थिति –**

मतदाताओं की अनुपस्थिति हमारे निर्वाचकों की आम विशेष बन गयी है। वस्तुतः भारत में अनुपस्थित मतदाताओं का प्रतिशत भी बहुत ज्यादा है। चुनावों में अधिकांश मतदाता रूचि नही लेते। अक्सर देखने में आता है कि मतदान के समय मुश्किल से 50 – 60 प्रतिशत मतदाता ही अपन मत का उपयोग करते है। इस समस्या का समाधान तो केवल मतदाताओं में मतदान के प्रति जागरूकता पैदा करके ही किया जा सकता है।

(7) **शासक दली द्वारा प्रशासनिक तन्त्र का दुरूपयोग –**

भारतीय चुनाव व्यवस्था का सही अति गम्भीर दोष है कि शासक दल एवं मंत्रियों द्वारा दली लाभो के लिए प्रशासनिक तन्त्र का दुरूपयोग किया जाता है। जैसे ही चुनाव की घोषणा होती है, केन्द्र ओर राज्य सरकारों द्वारा राजनीतिक लाभ प्राप्त करने के लिए अनेक विकास योजनाओं की घोषणाएं की जाती है। (जिनमें से अधिकांश कभी भी क्रियान्वित नहीं होती) अनेक कारखानों, स्कूलों, कॉलेजों, अस्पतलों और पुलों के शिलान्यास किये जाते है। सरकारी कर्मचारी के वेतन–भत्ते आदि में वृद्वि की जाती है, कर्ज दिये जाते हैं, लगान मु किये जाते हैं और सरकारी भवनों तथा सरकारी वाहनों आदि का दुरूपयोग किया जाता है।[27]

यह सब कुछ राजनीतिक भ्रष्टाचार के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसलिए कानूनी तौर पर ऐसी व्यवस्था कर दी जानी चाहिए ।

---

27. आई.बीद. जैनः भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, 1994, पृ. 23.68

(8) **निर्वाचन याचिकाओं पर निर्णय में विलम्ब –**

निर्वाचन याचिका में बहुत अधिक खर्च होता है तथा विवादों का शीघ्र निपटारा नहीं हो पाता। यह चिन्तनीय है कि जब तक याचिका का निर्णय होता है, तब तक तो लोकसभा और विधानसभा का कार्यकाल ही समाप्त हो जाता है और विवादग्रस्त व्यक्ति अपने पद पर बना ही रहता है।

निर्वाचन याचिकाओं पर शीघ्रता के साथ निर्णय की स्थिति को अपनाना बहुत अधिक आवश्यक है। इस सम्बन्ध में कानून बनाकर 6 माह या अधिक से अधिक एक वर्ष में निर्वाचन याचिका पर निर्णय अनिवार्य किया जा सकता है। जब भ्रष्ट साधनों को अपनाकर विजय बने सदस्यों का निर्वाचन चुनाव के शीघ्र बाद ही अवैधा घोषित होते हुए देखा जायेगा, तब चुनाव में भ्रष्ट साधन अपनाने पर भी कछ रोक लगने की आशा की जा सकती है।[28]

भूतपूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त श्री आर.के. त्रिवेदी के अनुसार ''यदि चुनाव आयोग के तहत एक निष्पक्ष अभिकरण के गठन तथा मुख्य चुनाव आयुक्त को किसी चुनाव परिनणाम की घोषणा होने के बाद उसे रद्द करने का अधिकार मिले, तो चुनाव में होने वाली धांधलियों पर रोक लगायी जा सकेगी।[29]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि हमारी चुनाव व्यवस्था निश्चित रूप से अनेक विकृतियों से ग्रसित है। भारतीय लोकतन्त्र के अस्तितव को

28. इकबाल नारायण : राष्ट्रीय आन्दोलन तथा भारतीय संविधान,1980, पृ.674

29. राजस्थान पत्रिका : 26 अप्रेल, 1985, पृ.1

बनाये रखने तथा उसे सुदढ़ करने की आज महत्ती आवश्यक है। इस सम्बन्ध में हमें कुछ ठोस कदम उठाने होगें। सरकारी और गैर सरकारी प्रयासों द्वारा चुनाव सम्बन्धी विकृतियों का उन्मुलन संभव है। मतदान की शक्ति मतदाताओं के हाथों में अंतिम शक्ति है। डा. लक्ष्मीमल का यह विचार सत्य प्रतीत होता है ''हमारे संविधान से आधुनिक उदारवादी दर्शन के सार तत्व सार्वभौमिक मताधिकार को अपनाया है। इस भव्य आर्दश को यथार्थ धरात पर लाने के लिए हमें अपने निर्वाचन प्रक्रमों की विकृतियों का परिचय प्राप्त कर उनकी शुद्वता की रक्षा के लिए प्रथक से प्रयास करना होगा। [30]

संक्षेप में हमारी निर्वाचन व्यवस्था में अनेक खामियां हैं, जिसे दूर करने के लिए बुद्वि – जीवियों व राजनीतिज्ञों को गम्भीरता से चिन्तन कर समाधान खोजना होगा।

30. आर.पी. जोशी : भारतीय सरकार एवं राजनीति, 2007, पृ. 391